

गुप्त साम्राज्य में कृषि व्यवस्था और कृषक जीवन: एक ऐतिहासिक अध्ययन

प्रोफे० शैलेन्द्र कुमार शर्मा¹ एवं डॉ० कृष्ण कान्त²

¹प्राचार्य, चौधरी चरण सिंह डिग्री कालेज हेवरा, इटावा, उ० प्र० ।

²सहायक आचार्य, चौधरी चरण सिंह डिग्री कालेज हेवरा, इटावा उ० प्र० ।

Article info

ABSTRACT

Article history:

Received Sep 12, 2026

Accepted Sep 21, 2026

Published Sep 30, 2026

Keywords:

गुप्त साम्राज्य
कृषि व्यवस्था
कृषक जीवन
भूमि संबंध
भू-राजस्व

गुप्त साम्राज्य भारतीय इतिहास का वह कालखंड है जिसमें प्रशासन, कला और अर्थव्यवस्था के अनेक पक्षों में उल्लेखनीय विकास हुआ। इस शोधपत्र का उद्देश्य गुप्तकालीन कृषि व्यवस्था की प्रमुख विशेषताओं और उसमें जीवन बिताने वाले कृषकों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति का ऐतिहासिक विश्लेषण करना है। अध्ययन ऐतिहासिक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति पर आधारित है, जिसमें उपलब्ध साहित्यिक, अभिलेखीय और आधुनिक इतिहासलेखन से जुड़े संदर्भों का तुलनात्मक उपयोग किया गया है। विवेचन में भूमि संबंध, भूमि-अनुदान, सिंचाई और कृषि तकनीक, भू-राजस्व तथा ग्रामीण समाज की संरचना को केंद्र में रखा गया है। अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि कृषि उत्पादन राज्य की आय और ग्रामीण स्थिरता का मुख्य आधार था, किंतु उसके लाभ सभी कृषक वर्गों में समान रूप से नहीं बँटे थे। भूमिधारी कृषक, आश्रित कृषक और कृषि श्रमिकों की परिस्थितियाँ भिन्न थीं, और क्षेत्रीय परिस्थितियाँ भी उत्पादन के स्वरूप को प्रभावित करती थीं। निष्कर्षतः गुप्तकालीन कृषि व्यवस्था को न केवल समृद्धि का और न केवल शोषण का युग मानना उचित है। इसे उत्पादन, कर और सामाजिक संबंधों के जटिल संतुलन के रूप में समझना आवश्यक है।

This work is licensed under a [Creative Commons Attribution-NonCommercial 4.0 International License](https://creativecommons.org/licenses/by-nc/4.0/).



Corresponding Author:

प्रोफे० शैलेन्द्र कुमार शर्मा

Email: shailosho@gmail.com

1. Introduction

गुप्त वंश का शासन लगभग चौथी से छठी शताब्दी ईस्वी तक भारत के विशाल भाग पर रहा। इस कालखंड को प्रशासनिक संगठन, साहित्यिक सृजन और सांस्कृतिक उपलब्धियों के लिए जाना जाता है। मजूमदार (1971) ने गुप्त साम्राज्य के राजनीतिक और प्रशासनिक ढाँचे का व्यापक परिचय दिया है, जिससे इस काल के सामान्य स्वरूप को समझने में सहायता मिलती है। किंतु राजनीतिक इतिहास के साथ-साथ आर्थिक और सामाजिक इतिहास को समझना भी उतना ही आवश्यक है, क्योंकि किसी भी साम्राज्य की स्थिरता उसकी उत्पादन व्यवस्था पर निर्भर करती है। राजाओं के अभियान, दरबार और शिलालेख शासन की ऊपरी तस्वीर दिखाते हैं, परंतु उस शासन को चलाने वाले धन का मूल गाँवों के खेतों में था। इसलिए गुप्तकाल का अध्ययन करते समय कृषि और कृषक को केंद्र में रखना इतिहास की वास्तविक बुनियाद को समझने का एक महत्वपूर्ण मार्ग है।

1.1 कृषि का महत्व और अध्ययन की आवश्यकता

प्राचीन भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि सबसे महत्वपूर्ण आधार थी। अधिकांश जनसंख्या गाँवों में रहती थी और उसकी आजीविका भूमि की खेती से जुड़ी थी। इसी कारण कृषि उत्पादन, भूमि के स्वामित्व और कर व्यवस्था का अध्ययन ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। तेवारी

(2020) ने वैदिक काल से गुप्त काल तक कृषि और समाज के संबंधों पर विचार किया है, जिससे यह समझ बनती है कि गुप्तकालीन कृषि व्यवस्था अचानक नहीं बनी, बल्कि पूर्ववर्ती परंपराओं के विकास का परिणाम थी।

मिश्र (2020) ने 200 ई. से 600 ई. तक की भू-राजस्व व्यवस्था पर अध्ययन किया है, जो गुप्तकाल को उसके पूर्ववर्ती और परवर्ती संदर्भों के बीच रखकर देखने की दृष्टि देता है। कृषक जीवन का अध्ययन इसलिए भी आवश्यक है कि राजनीतिक घटनाओं के विवरण में सामान्य जनता का जीवन प्रायः पीछे रह जाता है। अम्बेश (2018) और मुखर्जी (2018) की कृतियाँ इस दिशा में समाज और अर्थव्यवस्था के पक्षों को साथ रखकर देखने की आवश्यकता की ओर संकेत करती हैं।

1.2 शोध की केंद्रीय समस्या और सीमा

प्रस्तुत शोधपत्र की केंद्रीय समस्या यह है कि गुप्तकालीन कृषि व्यवस्था की संरचना क्या थी और उसने कृषक जीवन को किस प्रकार प्रभावित किया। यह प्रश्न केवल उत्पादन की मात्रा तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें भूमि के अधिकार, कर का भार, सामाजिक संबंध और क्षेत्रीय विविधता भी सम्मिलित हैं। अध्ययन की एक स्पष्ट सीमा यह है कि उपलब्ध संदर्भों में क्षेत्रीय विवरण असमान हैं और कई पक्षों पर पर्याप्त आँकड़े नहीं मिलते। इसलिए अनेक निष्कर्ष सामान्य प्रवृत्तियों के रूप में ही प्रस्तुत किए जा सकते हैं। इसी सीमा के भीतर रहते हुए यह शोधपत्र कृषि, भूमि, राजस्व और सामाजिक संबंधों की परस्पर निर्भरता को समझने का प्रयास करता है।

2. शोध के उद्देश्य एवं अध्ययन-पद्धति

इस शोधपत्र का मुख्य उद्देश्य गुप्तकालीन कृषि व्यवस्था की संरचना को समझना और उसके आधार पर कृषक जीवन की स्थिति का मूल्यांकन करना है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अध्ययन को पाँच प्रमुख पक्षों में बाँटा गया है। पहला पक्ष कृषि उत्पादन की सामान्य विशेषताओं से संबंधित है, जिसमें कृषि योग्य भूमि, उर्वरता और खेती के मौसम पर विचार किया गया है। दूसरा पक्ष भूमि के स्वामित्व, भूमि-अनुदान और उत्पादन के संबंध का है। तीसरा पक्ष सिंचाई, कृषि उपकरणों और तकनीक की भूमिका को देखता है। चौथा पक्ष भू-राजस्व, कृषकों के दायित्व और ग्रामीण आर्थिक संबंधों का विश्लेषण करता है। पाँचवाँ पक्ष कृषकों की सामाजिक स्थिति, उनकी आजीविका और उनके सामने आने वाली चुनौतियों का मूल्यांकन करता है।

अध्ययन-पद्धति ऐतिहासिक एवं विश्लेषणात्मक है। इसका आधार उन संदर्भों पर है जो इस शोध के लिए उपलब्ध कराए गए हैं। इनमें गुप्तकाल और उसके आसपास के कालखंड पर लिखे गए शोधपत्र, आधुनिक इतिहासकारों की पुस्तकें तथा भू-राजस्व, कृषि और समाज से जुड़े अध्ययन सम्मिलित हैं। इन स्रोतों का विश्लेषण करते समय यह देखा गया है कि कोई दावा किस स्तर का प्रमाण रखता है और उसे किस सीमा तक स्वीकार किया जा सकता है। जहाँ स्रोत किसी निष्कर्ष का पर्याप्त समर्थन नहीं करते, वहाँ उसे प्रमाणित तथ्य के रूप में नहीं रखा गया है, बल्कि उसे संभावित व्याख्या या सीमित अनुमान के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

इस शोधपत्र में विभिन्न प्रकार के संदर्भों को परस्पर जाँचने का तरीका अपनाया गया है। आधुनिक इतिहासलेखन के अध्ययन, जैसे सिंह (2014) और राय (2012) की कृतियाँ, गुप्तकालीन अर्थव्यवस्था की सामान्य रूपरेखा समझने में सहायक रहीं। व्यापार और वाणिज्य से जुड़े अध्ययन, जैसे चक्रवर्ती (2010) और चौधरी (2016), उत्पादन और बाज़ार के संबंध को समझने में सहायक हैं। भू-राजस्व पर केंद्रित अनुसंधान-लेख, जैसे मिश्र (2020), चौरसिया (2020), कुमार (2026) और देवी दलाल एवं अन्य (2026), राजस्व व्यवस्था के ऐतिहासिक विकास की दृष्टि देते हैं। इस प्रकार अध्ययन की पद्धति किसी एक स्रोत-वर्ग पर निर्भर रहने के बजाय विभिन्न प्रकार के संदर्भों को एक-दूसरे के संदर्भ में परखने पर बल देती है।

3. गुप्तकालीन कृषि व्यवस्था की प्रमुख विशेषताएँ

गुप्त साम्राज्य की अर्थव्यवस्था में कृषि सबसे प्रमुख आधार थी। ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकांश उत्पादन खेती से होता था और राज्य की आय का बड़ा भाग भी इसी से प्राप्त होता था। सिंह (2014) ने प्राचीन भारत के प्रशासन और अर्थव्यवस्था के संबंध पर विचार किया है, जिससे यह समझ बनती है कि कृषि उत्पादन और प्रशासनिक व्यवस्था एक-दूसरे पर निर्भर थे। राय (2012) ने गुप्तकालीन अर्थव्यवस्था के विश्लेषण

में कृषि की स्थिरता को ग्रामीण जीवन की स्थिरता से जोड़ा है। इन अध्ययनों के आधार पर कहा जा सकता है कि कृषि केवल आजीविका का साधन नहीं थी, बल्कि पूरे आर्थिक ढाँचे का केंद्रीय स्तंभ थी।

कृषि योग्य भूमि की उपलब्धता और उसकी उर्वरता उत्पादन की मात्रा निर्धारित करती थी। हर क्षेत्र की मिट्टी और जलवायु समान नहीं थी, इसलिए कृषि के स्वरूप में भी भिन्नता थी। नदी घाटियों की उपजाऊ भूमि में अधिक उत्पादन की संभावना थी, जबकि कुछ क्षेत्रों में कम उपजाऊ भूमि पर खेती सीमित और अनिश्चित रहती थी। जो भूमि पहले अनुपजाऊ मानी जाती थी, उसे भी परिश्रम और उपलब्ध साधनों से खेती योग्य बनाया जा सकता था, पर यह प्रक्रिया हर स्थान पर एक-सी नहीं थी। अतः यह मानना उचित नहीं होगा कि साम्राज्य के सभी भागों में कृषि एक समान रूप से समृद्ध थी। क्षेत्रीय परिस्थितियों का ध्यान रखना ही कृषि व्यवस्था की सही तस्वीर प्रस्तुत करने के लिए आवश्यक है।

खेती के कार्य मौसम और ऋतु-चक्र से गहराई से जुड़े थे। भूमि की तैयारी के लिए हल और अन्य पारंपरिक उपकरणों का प्रयोग होता था। बीज बोना, फसल की देखभाल और कटाई के कार्य मौसम पर निर्भर थे, और वर्षा की अनियमितता उत्पादन में अचानक कमी ला सकती थी। तेवारी (2020) के अध्ययन से संकेत मिलता है कि कृषि की मूल आवश्यकताएँ पूर्ववर्ती काल से लगभग समान रहीं, यद्यपि उनके सामाजिक और आर्थिक संगठन में परिवर्तन हुए। खाद्यान्न की खेती कृषि का केंद्रीय भाग थी, और अन्य फसलों की खेती भी क्षेत्र एवं संसाधनों के अनुसार होती थी। यह विविधता ग्रामीण अर्थव्यवस्था को कुछ हद तक आत्मनिर्भर बनाती थी, किंतु प्राकृतिक संकट के समय यही व्यवस्था कमजोर भी पड़ सकती थी।

4. भूमि व्यवस्था, स्वामित्व और भूमि-अनुदान

भूमि का स्वामित्व और उसका उपयोग कृषि व्यवस्था के केंद्र में था। भूमि पर किसका अधिकार है, उसे कौन जोतता है और उपज का हिस्सा किसे मिलता है, इन प्रश्नों के उत्तर से कृषक समाज की संरचना स्पष्ट होती है। भूमि के मापन और सीमांकन से जुड़े अभिलेख यह बताते हैं कि भूमि को किस प्रकार पहचाना और दर्ज किया जाता था, जिससे अधिकार और दायित्व तय होते थे। चौधरी (2016) ने भारतीय व्यापार और वाणिज्य के इतिहास के संदर्भ में उत्पादन और वाणिज्य के आपसी संबंध पर विचार किया है। इससे यह समझ बनती है कि भूमि का उत्पादन और उसके व्यापारिक उपयोग एक-दूसरे से पूरी तरह अलग नहीं थे।

गुप्तकाल में भूमि-अनुदान की परंपरा महत्वपूर्ण रूप से दिखाई देती है। ऐसे अनुदान में राज्य द्वारा किसी व्यक्ति, ब्राह्मण या धार्मिक संस्था को भूमि या उसके राजस्व का अधिकार दिया जाता था। इन अनुदानों के प्रभाव पर इतिहासकारों के विचारों में भिन्नता मिलती है। सिंह (2014) के अध्ययन से संकेत मिलता है कि भूमि-अनुदान को केवल प्रशासनिक उपाय मानना कठिन है, क्योंकि उसका संबंध सत्ता, धर्म और अर्थव्यवस्था तीनों से था। अनुदान का स्वरूप हर मामले में समान नहीं था, इसलिए उसके परिणामों का मूल्यांकन भी सावधानी से करना होगा।

भूमि-अनुदान को स्वतः कृषकों के शोषण या सामंती संबंधों का प्रमाण मान लेना उचित नहीं है। कुछ अनुदानों में केवल राजस्व का अधिकार हस्तांतरित होता था, जबकि खेती करने वाले कृषकों की स्थिति हर स्थान पर एक समान नहीं थी। कुछ कृषक भूमि के स्वामी थे, कुछ अनुदान प्राप्तकर्ता की भूमि पर आश्रित थे और कुछ केवल श्रम के माध्यम से खेती में लगे थे। अनुदान से ग्रामीण समाज में प्रशासनिक और आर्थिक परिवर्तन भी आए। मजूमदार (1971) ने गुप्त प्रशासन के संदर्भ में ऐसे परिवर्तनों की ओर संकेत किया है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि अनुदान केवल एक आर्थिक घटना नहीं था।

भूमि संबंधों के परिणामस्वरूप ग्रामीण समाज में आर्थिक स्तरीकरण भी दिखाई देता है। भूमिधारी कृषकों, आश्रित कृषकों और कृषि श्रमिकों के बीच आर्थिक अंतर स्वाभाविक था, और यह अंतर फसल की सफलता, परिवार के आकार और श्रम की उपलब्धता पर निर्भर था। अतः भूमि व्यवस्था को समझने के लिए केवल स्वामित्व के कानूनी स्वरूप पर नहीं, बल्कि वास्तविक उत्पादन और आजीविका के स्तर पर भी ध्यान देना होगा।

5. सिंचाई, कृषि तकनीक और उत्पादन के साधन

कृषि उत्पादन का स्थायित्व वर्षा और सिंचाई के साधनों पर निर्भर था। जिन क्षेत्रों में नदियों, तालाबों या कुओं से जल उपलब्ध था, वहाँ उत्पादन अपेक्षाकृत अधिक स्थिर रह सकता था। किंतु सिंचाई की उपलब्धता हर क्षेत्र में समान नहीं थी, इसलिए इसे पूरे साम्राज्य की सामान्य स्थिति के रूप में प्रस्तुत करना उचित नहीं होगा। सिंचाई कृषि की स्थिरता का एक महत्वपूर्ण, किंतु क्षेत्र-सापेक्ष, कारक था। वर्षा पर आधारित खेती में फसल की सफलता मौसम की अनुकूलता पर टिकी रहती थी, और इसी कारण जल-प्रबंधन का महत्व बढ़ जाता था। कृषि तकनीक के संदर्भ में हल, बीज चयन, भूमि की उर्वरता बनाए रखने के उपाय और पशुओं का उपयोग विशेष महत्व रखते थे। पशु हल चलाने और भार ढोने के लिए आवश्यक थे, और कृषि कार्य में उनकी उपलब्धता परिवार की क्षमता को प्रभावित करती थी। परिवार का श्रम भी उत्पादन का अनिवार्य भाग था, क्योंकि बुवाई, निराई और कटाई जैसे कार्य समय पर पूरे होने पर ही फसल का लाभ मिलता था। इस प्रकार कृषि उत्पादन केवल भूमि पर नहीं, बल्कि उपलब्ध श्रम, पशुधन और उपकरणों पर भी निर्भर था।

इन साधनों की उपलब्धता कृषकों की आजीविका को सीधे प्रभावित करती थी। अच्छी सिंचाई व्यवस्था होने पर फसल की हानि का जोखिम कम रहता और परिवार को अपेक्षाकृत स्थिर आय मिल सकती थी। इसके विपरीत, सूखे या अधिक वर्षा के समय उत्पादन में गिरावट से परिवार की आर्थिक स्थिति तेजी से कमजोर हो सकती थी। शर्मा (1987) ने मौर्यकालीन समाज और अर्थव्यवस्था के विवेचन में उत्पादन और सामाजिक संगठन के संबंध पर ध्यान दिया है, जिससे गुप्तकाल में इन पक्षों की निरंतरता और परिवर्तन दोनों को पहचानने में सहायता मिलती है। फिर भी इनके व्यापक प्रसार के बारे में पूरी जानकारी उपलब्ध नहीं है, इसलिए इस विषय पर निष्कर्ष सीमित और सावधानीपूर्ण रूप में ही रखे गए हैं।

6. भू-राजस्व व्यवस्था और कृषकों के आर्थिक दायित्व

भू-राजस्व राज्य की आय का एक प्रमुख स्रोत था और इसका सीधा संबंध कृषि उत्पादन से था। राजस्व की वसूली भूमि और उपज के आधार पर होती थी, इसलिए उत्पादन में वृद्धि या कमी का असर राज्य और कृषक दोनों पर पड़ता था। मिश्र (2020) ने प्राचीन भारत में भू-राजस्व व्यवस्था के ऐतिहासिक विकास को रेखांकित किया है, जिससे गुप्तकालीन राजस्व प्रणाली को उसके पूर्ववर्ती और परवर्ती संदर्भों में समझना संभव होता है। चौरसिया (2020) का अध्ययन इस विषय की प्रशासनिक पृष्ठभूमि पर केंद्रित है। कुमार (2026) ने गुप्तकालीन राजस्व प्रणाली का ऐतिहासिक और विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है, और शुक्ल (2025) ने मौर्यकालीन तथा गुप्तकालीन नीतियों का ऐतिहासिक विश्लेषण किया है। इन अध्ययनों से यह संकेत मिलता है कि राजस्व का स्वरूप एक समान और स्थिर नहीं था, बल्कि समय और परिस्थिति के साथ बदलता रहा।

उपज के हिस्से, नकद भुगतान अथवा अन्य दायित्वों का स्वरूप क्षेत्र, भूमि के प्रकार और प्रशासनिक परिस्थितियों पर निर्भर था। किसी एक अभिलेख या एक क्षेत्र में वर्णित व्यवस्था को संपूर्ण गुप्त साम्राज्य पर लागू करना उचित नहीं होगा। इसलिए कर की दरों, करों के नामों और भुगतान की पद्धतियों के संबंध में अत्यंत सावधानी आवश्यक है, और जहाँ प्रमाण स्पष्ट न हों, वहाँ निष्कर्ष को सामान्य प्रवृत्ति तक ही सीमित रखना चाहिए। यह सावधानी इसलिए भी आवश्यक है क्योंकि राजस्व संबंधी अध्ययन प्रायः विशेष प्रशासनिक संदर्भों पर केंद्रित होते हैं। स्थानीय प्रशासन और भूमि-अनुदान प्राप्तकर्ताओं की भूमिका भी राजस्व वसूली से जुड़ी थी। अनुदान प्राप्तकर्ता को राजस्व का अधिकार मिलने से कर वसूली की संरचना बदल सकती थी, जिससे कृषक परिवारों पर कर-भार का स्वरूप भी प्रभावित होता था। चक्रवर्ती (2010) ने गुप्त काल के व्यापारिक और आर्थिक नेटवर्क पर विचार किया है, जिससे कृषि उपज के बाज़ार तक पहुँचने और उससे राजस्व तथा व्यापार के संबंध को समझने में सहायता मिलती है। प्राकृतिक संकट और फसल की विफलता की स्थिति में कर का भार कृषक परिवारों के लिए कठिनाई उत्पन्न कर सकता था। ऐसे समय में परिवार को उधार, बचत या सामुदायिक सहयोग पर निर्भर होना पड़ सकता था। यद्यपि इन स्थितियों के विस्तृत आँकड़े सीमित हैं, फिर भी यह तर्कसंगत है कि कर-व्यवस्था की सफलता उत्पादन की स्थिरता पर निर्भर थी।

7. कृषक जीवन की सामाजिक और आर्थिक स्थिति

7.1 कृषक परिवार की आजीविका

गुप्तकाल में कृषक परिवार की आजीविका मुख्यतः खेती पर निर्भर थी। परिवार के सदस्य किसी न किसी रूप में कृषि कार्य में लगे रहते थे, और फसल का अच्छा या बुरा होना परिवार की आर्थिक स्थिति तय करता था। दैनिक जीवन की लय मौसम के अनुसार बदलती थी। बुवाई के समय परिश्रम अधिक होता था, कटाई के समय परिवार के सभी सदस्यों का योगदान आवश्यक हो जाता था, और खाली मौसम में अन्य छोटे कार्य किए जाते थे। किंतु यह जीवन एक समान नहीं था। भूमि के स्वामित्व, परिवार के आकार, श्रम की उपलब्धता और स्थानीय परिस्थितियों के कारण कृषकों के बीच आर्थिक अंतर स्वाभाविक था।

7.2 कृषकों के विभिन्न वर्ग

भूमिधारी कृषक वे थे जिनके पास अपनी भूमि थी और जो उपज का अधिक हिस्सा स्वयं प्राप्त कर सकते थे। आश्रित कृषक भूमि पर खेती करते थे, किंतु उनके अधिकार सीमित थे और उन्हें उपज या श्रम के रूप में दायित्व पूरे करने पड़ते थे। कृषि श्रमिकों की स्थिति इनसे भी कमजोर हो सकती थी, क्योंकि उनकी आजीविका मजदूरी और काम की उपलब्धता पर निर्भर थी। मजदूरी के स्वरूप के संबंध में स्रोतों में सीमित जानकारी मिलती है, इसलिए इस विषय पर संतुलित और सावधानीपूर्ण विवेचन ही उचित है। इन वर्गों के बीच की सीमाएँ कठोर नहीं थीं, और एक ही परिवार कभी भूमिधारी और कभी आश्रित की स्थिति में भी आ सकता था।

7.3 जाति, समुदाय और सामाजिक सहयोग

जाति और सामाजिक स्थिति का प्रभाव भी कृषक जीवन पर पड़ता था। पेशागत संबंध प्रायः सामाजिक पहचान से जुड़े होते थे, और इससे किसे किस प्रकार का कार्य मिलेगा, यह भी प्रभावित होता था। अम्बेश (2018) ने गुप्तकाल के भारतीय समाज और संस्कृति पर पड़े प्रभावों का विवेचन किया है, जिससे ग्रामीण जीवन और सामाजिक संरचना के संबंध को समझने में सहायता मिलती है। मुखर्जी (2018) ने गुप्त साम्राज्य के सामाजिक परिदृश्य के साथ आर्थिक संरचना को भी प्रस्तुत किया है, जिससे कृषक जीवन की समग्र तस्वीर बनाने में मदद मिलती है। प्राचीन भारत के सामाजिक और आर्थिक इतिहास पर झा (2011) की कृति भी इस व्यापक ढाँचे को समझने के लिए उपयोगी है।

ग्रामीण समुदाय और स्थानीय संस्थाएँ कृषकों के जीवन में सहयोग का आधार थीं। बुवाई, कटाई और सिंचाई जैसे कार्यों में पारस्परिक सहयोग आवश्यक था, और संकट के समय सामुदायिक संबंध सहारा देते थे। किंतु यही संबंध कई बार असमानता को भी बनाए रखते थे, क्योंकि सहयोग की शर्तें प्रायः प्रभावशाली वर्ग के हाथ में रहती थीं। अतः कृषक समाज को केवल सहयोग या केवल शोषण के दृष्टिकोण से देखना अपर्याप्त होगा। कृषकों के सामने अवसर और कठिनाइयाँ दोनों थीं। उपजाऊ भूमि और अच्छे सिंचाई साधनों वाले परिवार अपेक्षाकृत सुरक्षित थे, जबकि प्राकृतिक आपदा, कर-भार या भूमि के अभाव से जूझने वाले परिवार अधिक असुरक्षित रहते थे।

8. कृषि व्यवस्था और ग्रामीण समाज के पारस्परिक संबंध

पूर्ववर्ती अनुभागों के विवेचन से स्पष्ट होता है कि गुप्तकालीन कृषि व्यवस्था एक जटिल संरचना थी, जिसमें उत्पादन, भूमि संबंध, राजस्व और सामाजिक स्थिति परस्पर जुड़े थे। कृषि उत्पादन ग्रामीण आर्थिक स्थिरता का आधार था, और उसी से राज्य की आय तथा कृषक परिवार की आजीविका तय होती थी। उत्पादन में वृद्धि से राजस्व की संभावना बढ़ती थी, किंतु उत्पादन में कमी होने पर कर का भार कृषकों के लिए असहनीय हो सकता था। इस प्रकार उत्पादन और कराधान के बीच एक नाजुक संतुलन बना रहता था, जो किसी भी प्रतिकूल वर्ष में बिगड़ सकता था।

भूमि-अनुदान ने इस संरचना में सत्ता-संबंधों को भी प्रभावित किया। अनुदान प्राप्तकर्ता का गाँव पर प्रभाव बढ़ने से स्थानीय सत्ता का स्वरूप बदल सकता था, और इससे कृषकों के भूमि-अधिकार तथा दायित्वों की प्रकृति भी प्रभावित हो सकती थी। इस दृष्टि से भूमि-अनुदान केवल प्रशासनिक निर्णय नहीं, बल्कि ग्रामीण समाज की संरचना को बदलने वाली प्रक्रिया भी था। कराधान और कृषक परिवार की आर्थिक स्थिति

का संबंध इस व्यवस्था का सबसे संवेदनशील पक्ष था। श्रमिकों और छोटे कृषकों की असुरक्षित स्थिति से ग्रामीण समाज में आर्थिक दूरी बढ़ सकती थी।

क्षेत्रीय परिस्थितियाँ इन सभी संबंधों को अलग-अलग रूप देती थीं। उपजाऊ क्षेत्रों में उत्पादन की संभावना अधिक थी, जबकि कठिन भौगोलिक क्षेत्रों में कृषि सीमित रहती थी। इसी कारण गुप्त साम्राज्य की कृषि व्यवस्था को एक समान मॉडल के रूप में प्रस्तुत करना उचित नहीं है। इस विविधता को ध्यान में रखकर ही कृषि और ग्रामीण समाज के बीच के संबंध को सही रूप में समझा जा सकता है।

9. निष्कर्ष

इस शोधपत्र में गुप्तकालीन कृषि व्यवस्था और कृषक जीवन का ऐतिहासिक विश्लेषण किया गया है। अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि कृषि गुप्त साम्राज्य की अर्थव्यवस्था का केंद्रीय आधार थी और उसी से राजस्व व्यवस्था तथा ग्रामीण समाज की स्थिरता निर्धारित होती थी। भूमि के स्वामित्व, भूमि-अनुदान की परंपरा और भू-राजस्व की संरचना ने उत्पादन के साथ-साथ सत्ता और सामाजिक संबंधों को भी प्रभावित किया। सिंचाई और कृषि तकनीक की उपलब्धता उत्पादन की स्थिरता का महत्वपूर्ण कारक थी, किंतु इनका प्रसार क्षेत्र के अनुसार भिन्न था।

कृषक जीवन की स्थिति एकरूप नहीं थी। भूमिधारी कृषक, आश्रित कृषक और कृषि श्रमिकों की परिस्थितियों में स्पष्ट अंतर था। इसलिए गुप्तकाल को केवल समृद्धि का या केवल शोषण का युग घोषित करना तथ्यों के साथ न्याय नहीं होगा। अधिक संतुलित दृष्टि यह है कि इस काल में उत्पादन, कर और सामाजिक संबंधों के बीच एक जटिल संतुलन विद्यमान था। उपलब्ध संदर्भों की सीमा के कारण क्षेत्रीय आँकड़ों और मजदूरी के स्वरूप जैसे कई पक्षों पर निश्चित निष्कर्ष देना कठिन है। भविष्य के अध्ययनों में क्षेत्र-विशेष के अभिलेखों और तुलनात्मक स्रोतों के आधार पर इन प्रश्नों का अधिक विस्तृत परीक्षण किया जा सकता है।

Reference

- [1]. अम्बेश, मीना. (2018). गुप्तकाल का भारतीय समाज एवं संस्कृति पर प्रभाव. *Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education*, 15(4), 566–570. ISSN 2230-7540.
- [2]. अयंगर, आर. सी. (2009). *Economic history of ancient India*. Banaras Hindu University Press.
- [3]. चक्रवर्ती, बलराम. (2010). Asian trade network in Gupta period (पृ. 132–150). ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
- [4]. चौधरी, अनिल. (2016). भारतीय व्यापार और वाणिज्य का इतिहास (पृ. 178–195). ओरिएंट ब्लैकस्वान.
- [5]. चौरसिया, मंदीप कुमार. (2020). गुप्तकाल में भू-राजस्व. *Sahitya Samhita*, 6(2), 1–7. ISSN 2454-2695.
- [6]. देवी दलाल, पिकी, एवं सुमन, कुमारी. (2026). भू राजस्व के विशेष संदर्भ में भू राजस्व व्यवस्था का उदय और विकास: एक अध्ययन. *International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends*, 3(2), 10–16. <https://ijarmt.com/index.php/j/article/view/834>
- [7]. झा, डी. एन. (2011). प्राचीन भारत का सामाजिक और आर्थिक इतिहास. पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस.
- [8]. मजूमदार, आर. सी. (1971). *The Gupta empire* (पृ. 215–230). मोतीलाल बनारसीदास.
- [9]. मिश्र, ब्रजेश. (2020). प्राचीन भारत में भू-राजस्व व्यवस्था (200 ई. से 600 ई. तक). *International Journal of Advances in Engineering and Management*, 2(9), 363–371. ISSN 2395-5252. <https://www.ijaem.net>
- [10]. मुखर्जी, ब्रजेश. (2018). गुप्त साम्राज्य का आर्थिक और सामाजिक परिदृश्य (पृ. 95–110). प्रभात प्रकाशन.
- [11]. राय, नीलकंठ. (2012). गुप्तकालीन अर्थव्यवस्था: एक विश्लेषण. नेशनल बुक ट्रस्ट.
- [12]. वर्मा, निशा, एवं सिंह, कमल. (2026). प्राचीन भारत में कृषि व्यवस्था (ऐतिहासिक संदर्भ में). *International Journal of Multidisciplinary Trends*, 8(1), 34–35. <https://doi.org/10.22271/multi.2026.v8.i1a.899>
- [13]. शर्मा, रामशरण. (1987). मौर्यकालीन समाज और अर्थव्यवस्था. दिल्ली विश्वविद्यालय प्रकाशन.

- [14]. शुक्ल, पंकज कुमार. (2025). मौर्य कालीन एवं गुप्तकालीन नीतियों का ऐतिहासिक विश्लेषण. *International Journal of Innovative Research and Creative Technology*, 11(2), 1–6. ISSN 2454-5988.
- [15]. सिंह, उपेंद्र. (2014). प्राचीन भारत का प्रशासन और अर्थव्यवस्था (पृ. 90–108). राजकमल प्रकाशन.
- [16]. तेवारी, कमलेश कुमार. (2020). Agriculture and society from the Vedic period to the Gupta period. *ShodhKosh: Journal of Visual and Performing Arts*, 1(1), 62–69. <https://doi.org/10.29121/shodhkosh.v1.i1.2020.5847>
- [17]. कुमार, पिकू. (2026). गुप्तकालीन राजस्व प्रणाली का ऐतिहासिक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन. *International Journal of Scientific Research in Engineering and Management*, 10(4), 1–9. <https://doi.org/10.55041/IJSREM59041>

Cite this Article:

प्रोफे० शैलेन्द्र कुमार शर्मा एवं डॉ० कृष्ण कान्त, "गुप्त साम्राज्य में कृषि व्यवस्था और कृषक जीवन: एक ऐतिहासिक अध्ययन", *Ved International Journal of Arts, Commerce and Technology (VIJACT)*, ISSN: 3139-1656 (Online), Volume 2, Issue 9, pp. 15-21, Sep 2026.
Journal URL: <https://vijact.com>
DOI: <https://doi.org/10.65785/vijact.v2i9.118>

Disclaimer/Publisher's Note: The author(s) are solely responsible for the content of this article, including its accuracy, originality, and ethical compliance. The publisher and editors assume no liability for any errors, copyright issues, or consequences arising from its publication or use.